© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्रधानमंत्री की संवैधानिक स्थिति

डॉ. अलका चतुर्वेदी

पूर्वशोधच्छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग,

एच.एन. बहुगुणा गढवाल, विश्वविद्यालय, श्रीनगर उत्तराखण्ड

शोध आलेख सार– संघ सरकार एवं इकाई राज्यों की सरकारों के मध्य कड़ी के रूप में कार्य करना भी उसी का उत्तरदायित्व है। इन सभी पदों के एक ही व्यक्ति में समाहित हो जाने के कारण प्रधानमंत्री का पद शक्ति, प्रतिष्ठा, गौरव एवं गरिमा का पद बन गया है।

मुख्य शब्द– प्रधानमंत्री, सरकार, राजनीतिक, भारतीय संविधान, संवैधानिक।

प्रधानमंत्री देश की राजनीतिक व्यवस्था की धुरी है। इसे **'देश का हृदय स्थल', 'गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र', 'राजनीतिक शासक' और 'सर्वोच्च शासक'** की संज्ञा दी जाती है। जहाँ राष्ट्रपति देश का औपचारिक या संवैधानिक शासक है, वहाँ प्रधानमंत्री को देश का वास्तविक शासक समझा जाता है। प्रधानमंत्री के बारे में **हम्फ्री बर्कले** ने कहा है कि, ''आधुनिक युग में प्रधानमंत्री की प्रधानमंत्रीय भूमिका के अन्तर्गत संसद की सर्वोच्चता का सिद्धान्त क्षीण हो गया है।''[1] **ग्रीब्ज** के अनुसार,–''सरकार राष्ट्र का स्वामी है और वह सरकार का स्वामी है।''[2]

संवैधानिक स्थिति :

प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत दल का नेता तथा मन्त्रिपरिषद का निर्माता होता है। राष्ट्रपति उसकी सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति कर विभागों का वितरण करता है। प्रधानमंत्री किसी भी समय अपनी मन्त्रि–परिषद में परिवर्तन कर सकता है। प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति मन्त्रियों के त्याग पत्र स्वीकार करता है। प्रधानमंत्री का त्यागपत्र समस्त मंत्रिमण्डल का त्यागपत्र माना जाता है। प्रधानमंत्री को मन्त्रिमण्डल के गठन में व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं। प्रधानमंत्री मन्त्रिमण्डल का संचालन कर उसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसके द्वारा मन्त्रिमण्डल का नेतृत्व निर्देशन और नियन्त्रण किया जाता है। वह विभिन्न मन्त्रालयों में समन्वय स्थापित करता है तथा मन्त्रिमण्डल के कार्यों की समीक्षा करता है। मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय पर उसका नियंत्रण होता है। प्रधानमंत्री राष्ट्रपति और केन्द्रीय मन्त्रि–परिषद के बीच स्थिति से अवगत कराता है। राष्ट्रपति को **'सूचना–प्रदान'** करना प्रधानमन्त्री का संवैधानिक दायित्व है। यदि राष्ट्रपति उसके मन्त्रिमण्डल की किसी गतिविधि या निर्णय के प्रति कोई सुझाव दें तो प्रधानमन्त्री का यह दायित्व है कि वह उसे क्रियान्वित करें।

प्रधानमंत्री संसद का नेता होता है। विपक्षी दलों के साथ राष्ट्रीय मामलों पर विचार–विमर्श करके सहमति प्राप्त करना उसका दायित्व होता है तथा वह भारतीय संसद और जनता के बीच का **'सम्पर्क सूत्र'** होता है। वह देश की नीतियों का अधिकृत प्रवक्ता है। उसके द्वारा अभिव्यक्त किये गये विचारों, भाषणों, अपीलों और संदेशों को नीतिगत वक्तव्य माना जाता है। वह संसद में और संसद के बाहर, अपने मंत्रिमण्डल की नीतियां की घोषणा करता है। सभी महत्वपूर्ण प्रशासनिक नियुक्तियाँ प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इसके नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रशासनिक नीतियाँ और सुधार सम्पादित किये जाते हैं। राज्य –राजनीति को प्रभावित करने की शक्ति के कारण ही उसे 'सर्वोच्च मुख्यमंत्री' की संज्ञा दी जाती है। वह देश की एकता और अखण्डता का सूत्रधार है। उसके सुदृढ़ नेतृत्व से ही देश में साम्प्रदायिक, जातीय, आतंकवादी, पृथक्तावादी तथा अलगाववादी तत्वों को समाप्त किया जा सकता है। प्रधानमंत्री को संसद के निम्न सदन (लोकसभा) को भंग कराने की महत्वपूर्ण शक्ति प्राप्त है। अगर वह राष्ट्रपति से लोकसभा भंग कराने की सिफारिश करे तो राष्ट्रपति उसकी सलाह पर लोकसभा भंग करने का निर्णय लेता है। प्रधानमंत्री को विदेश–नीति का निर्माता माना जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्धारण करने, विदेशी राष्ट्रों के साथ संधिया और समझौते सम्पन्न करने में उसकी आधारभूत महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

प्रधानमंत्री और मन्त्रियों की नियुक्ति में राष्ट्रपति की भूमिका :

संविधान के अनुच्छेद 75(1)[3] के अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श से करेगा भारत में संवैधानिक दृष्टि से प्रधानमंत्री के निए नियुक्ति के समय संसद सदस्य होना अनिवार्य नहीं है। जून, 1991 में जब पी0 वी0 नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया तो वे संसद के किसी भी सदन के सदस्य नही थे, मई, 1996 में जब राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने कर्नाटक के मुख्यमंत्री एच0 डी0 देवगौड़ा को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया तो वे भी संसद के सदस्य नहीं थे। यदि वह नियुक्ति के समय संसद सदस्य नहीं है तो उसे 6 महीने के अन्तर्गत संसद के किसी भी सदन की सदस्यता प्राप्त करनी चाहिए। यदि वह वंछित समय में संसद में स्थान प्राप्त करने में असमर्थ रहता है तो वह प्रधानमन्त्री नहीं रहेगा। साथ ही उसे लोकसभा के बहुमत दल का विश्वास और समर्थन प्राप्त होना चाहिए, क्योंकि वह साँविधानिक दृष्टि से लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है। इंग्लैण्ड में परंपरा यह है कि प्रधानमंत्री को कॉमन सभा का ही सदस्य होना चाहिए। भारत में ऐसी कोई परम्परा स्थापित नहीं हुई है। केन्द्र और राज्य दोनों ही स्थानों पर प्रधानमन्त्री और मुख्यमन्त्रियाँ की नियुक्ति उच्च सदन से सम्बन्धित व्यक्तियों में से हुई है।[4]

यदि लोकसभा में किसी दल को स्पष्ट रूप से पूर्ण बहुमत प्राप्त हो एवं वह दल अपना सर्वमान्य नेता निर्वाचित कर सकता है तो राष्ट्रपति को प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में साधारण परिस्थितियाँ में कोई स्वविवेकीय अधिकारी प्राप्त नहीं हैं यद्यपि संविधान के अनुसार राष्ट्रपति पर इस सम्बन्ध में कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। वह किसी भी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त कर सकता है। परन्तु व्यावहारिक राजनीति में ब्रिटिश सम्राट की तरह उसे बहुमत दल के नेता को ही प्रधानमंत्री पद के लिए आमन्त्रित करना पड़ता है। कुछ असाधारण परिस्थितियाँ में इंग्लैण्ड के राजा की भांति भारतीय राष्ट्रपति भी स्वविवेक के अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति :

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के कार्यों के सम्पादन में सहायता और परामर्श देने के लिए अनुच्छेद का पक्ष इस प्रकार है– ''राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और परामर्श देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति अपने कृत्यों के निर्वहन में उसके परामर्श के अनुसार चलेंगे। राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद से उसकी मंत्रणा पर पुनर्विचार की माँग कर सकते हैं। ऐसे पुनर्विचार के बाद जो भी परामर्श या मंत्रणा राष्ट्रपति के पास भेजी जाती है, उसे वह उसी के अनुसार स्वीकार करेंगे।''[5] इन नवीन व्यवस्था ने यह अनिवार्य कर दिया है कि यद्यपि राष्ट्रपति किसी परामर्श या मंत्रणा को मंत्रि–परिषद के पास पुनर्विचार के लिए भेज सकता है, लेकिन पुनर्विचार में भी यदि मन्त्रि–परिषद मूल मंत्रणा में कोई परिवर्तन नहीं करती तो राष्ट्रपति को उसे स्वीकार कर लेना पड़ता है। संविधान में यह स्पष्ट उल्लेख है कि मन्त्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई मन्त्रणा के सम्बन्ध में किसी विषय पर किसी न्यायालय में जांच नहीं की जायेगी। 42वें संविधान संशोधन में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति अपने कार्यो के सम्पादन में प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता वाली मंत्री–परिषद के परामर्श के अनुसार चलेगा।[6] इसके बाद 44वें संविधान संशोधन में केवल यह शर्त लगा दी गई है कि राष्ट्रपति मन्त्रि–परिषद से अपने परामर्श पर पुनर्विचार की अपेक्षा कर सकता है। किन्तु इस पुनर्विचार के पश्चात् दिये हुए परामर्श के अनुसार उसे कार्य करना होगा।

प्रधानमंत्री का दायित्व है कि भारत संघ के कार्यो के सम्बन्ध में मन्त्रि–परिषद के निर्णयों से तथा अन्य सम्बन्धित जानकारी से राष्ट्रपति को समय–समय पर अवगत कराए। प्रधानमन्त्री का यह भी दायित्व है कि अगर राष्ट्रपति चाहे तो किसी ऐसे मामले को जिस पर किसी मन्त्री ने निर्णय कर लिया हो, परन्तु जिस पर मन्त्रि–परिषद द्वारा विचार नहीं किया गया हो, मन्त्रि–परिषद के विचारार्थ प्रस्तुत करवा सकता है। व्यवहारिक राजनीति में प्रधानमंत्री की स्थिति निश्चित ही तब अधिक मजबूत होती है जब राष्ट्रपति भवन में एक मैत्रीपूर्ण व्यक्तित्व हों। देश की उन्नति के लिए प्रधानमन्त्री तथा राष्ट्रपति को एक–दूसरे को सहयोग देते हुए अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए। वैसे संवैधानिक व्यवस्था की माँग है कि राष्ट्रपति वही करे जो प्रधानमंत्री परामर्श दें। प्रधानमंत्री या

शक्तिशाली व्यक्तित्व और व्यापक प्रभाव किसी व्यक्ति को राष्ट्रपति पद पर आसीन कराने में निर्णायक भूमिका निभा सकता है, किन्तु पद पर आसीन होने के बाद उस व्यक्ति को राजनीतिक तटस्थता रखते हुए अपने उत्तरदायित्वों को निभाना चाहिए। भारत के सभी राष्ट्रपतियों ने इस व्यवस्था से और परम्परा से सहमति प्रकट की है कि राष्ट्रपति को मन्त्रि–परिषद की मंत्रणा के अनुसार अपनी शक्तियों का प्रयोग और कर्त्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए।

''राम जवाया बनाम भारत संघ'', ''यू0 एन. राव बनाव इन्दिरा गाँधी'', तथा ''शमशेर सिंह बनाम स्टेट ऑफ पंजाब'' के वादों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से भीा उपरोक्त मत की पुष्टि होती है।[7] संविधान राष्ट्रपति को ऐसी स्थिति में हस्तक्षेप करने का अधिकार देता है जबकि कोई मन्त्रि नीति के किसी प्रश्न पर, मन्त्रि–मण्डल के समक्ष रखे बिना स्वयं निर्णय ले लेता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति ऐसे निर्णय को मन्त्रि–परिषद के विचारार्थ रखने की अपेक्षा कर सकता है। सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को सफलता के साथ कार्यान्वित करना ही इस प्रावधान का मुख्य उद्देश्य है। 42वें और 44वें संविधान संशोधन के फलस्वरुप यद्यपि राष्ट्रपति के विशेषाधिकार का क्षेत्र सीमित हो गया है, तथापि ऐसी परिस्थितयाँ हैं, जहां राष्ट्रपति की शक्ति पर इन संशोधनों को कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

प्रधानमन्त्री : अधिकार और उत्तरदायित्व :

भारतीय प्रधानमंत्री के अधिकार व्यापक हैं, क्योंकि मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति के कायम अधिकारों का प्रयोग करता है। आपात–स्थिति में मन्त्रिमण्डल के अधिकार और भी व्यापक हो जाते है। मन्त्रिमण्डल प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में कार्य करता है। अतः प्रधानमंत्री ही इसका सर्वोपरि होता है।

प्रधानमन्त्री की असाधारण शक्तियों पर टिप्पणी करते हुए संविधान सभा में प्रो0 के0 टी0 शाह ने कहा था कि ''उसकी विशाल शक्तियों को देखते हुए यह भय लगता है कि यदि वह चाहे तो किसी भी समय देश का अधिनायक बन सकता है।''[8] प्रधानमन्त्री की वास्तविक शक्ति बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व, चरित्र और उसकी नेतृत्व क्षमता में निहित हैं। वह इस बात पर निर्भर है कि उसका चयन किस प्रकार हुआ है। यदि प्रधानमंत्री का चयन उसके स्वयं के व्यक्तित्व तथा दल में उसकी सृदृढ़ स्थिति के कारण हुआ है तो प्रधानमंत्री की स्थिति निश्चय ही मजबूत होती है। यदि प्रधानमंत्री के चयन में दलीय नेताओं, मुख्यमंत्रियाँ आदि का विशेष हाथ है तो वे एक कमजोर प्रधानमंत्री का चयन करने को लालायित हो सकते हैं। जब लाल बहादुर शास्त्री को प्रधानमंत्री 'समकक्षों में प्रथम' से अधिक नहीं होगा। 1966 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के चयन में काँग्रेस के 'सिण्डीकेट गुट' की प्रमुख भूमिका होने के कारण उनकी स्थिति कमजोर रही, लेकिन 1971 के लोकसभा के मध्यावधि चुनाव में उनको लोकसभा में दो–तिहाई बहुमत मिलने से उनकी स्थिति बहुत सुदृढ़ हो गई। 1977 में जनता पार्टी के

'घटकवाद' के कारण प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई की स्थिति भी सुदृढ़ रही। अल्पमतीय प्रधानमन्त्रियाँ चौधरी चरण सिंह, वी0 पी0 सिंह, चन्द्रशेखर, पी0 वी0 नरसिम्हाराव, एच0 डी0 देवगोड़ा, आई0 के0 गुजराल तथा अटल बिहारी बाजपेयी की स्थिति उतनी सुदृढ़ नहीं रही है।

(क) निर्वाचन के स्वरूप का प्रधानमन्त्री की भूमिका पर प्रभाव :

पं0 जवाहर लाल नेहरू :– 15 अगस्त, 1947 से लेकर 26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू होने तक पं0 नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे, परन्तु सरदार वल्लभ भाई पटेल के दल मे शक्तिशाली प्रभाव एवं नियन्त्रणकारी स्थिति के कारण उनका नेतृत्व निर्विवाद एवं चुनौतियों से रहित नहीं था। दिसम्बर, 1950 में पटेल के निधन के पश्चात् वे संसदीय दल और संगठन के निर्विवाद नेता हो जाने के कारण 1952, 1957 और 1962 के आम निर्वाचनों के साथ ही सदैव काँग्रेस संसदीय दल के निर्विरोध नेता चुने जाते हैं उनका सम्भ्रान्तीय परिवारिक परिवेश, शैक्षिणिक योग्यता, स्वतंत्रता–संघर्ष में निःस्वार्थ त्याग, अपान लोक प्रियता, चमत्कारिक व्यक्तित्व, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति, चरित्रिक ईमानदारी एवं नियन्त्रणकारी नेतृत्व उन्हें प्रधानमन्त्री पद पर निरन्त 18 वर्षो के दीर्घकाल तक अधिकार बनाए रखने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ। वे भारत के अब तक के सर्वाधिक शक्तिशाली और करिश्माई प्रधानमन्त्री हुए है।[9]

प्रधानमन्त्री पद की आन्तरिक व्याख्या :

27 मई, 1964 को नेहरू की मृत्यु के कुछ घण्टों के अन्तर्गत ही कैबिनेट की आपात–कालीन समिति की अनुसंशा पर राष्ट्रपति डॉ0 राधाकृष्णन द्वारा कैबिनेट के वरिष्ठतम सदस्य गुलजारी लाल नंदा को कार्यवाहक प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया। माइकल ब्रेचर के अनुसार कृष्णा मेनन ने इस अस्थायी व्यवस्था को असंवैधानिक व्यवस्था मानते हुए कहा था–''राष्ट्रपति द्वारा सिद्धान्ततः इन असामान्य परिस्थितियों में अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग करना अधिक संवैधानिक था।''[10] परन्तु एच0 एम0 जैन इसे पूर्णतया साँवैधानिक मानते हैं। राष्ट्रपति ने गुलजारी लाल नंदा को अन्तरिम कार्यवाहक प्रधानमन्त्री नियुक्त कर, देश को नेतृत्व हीनता के संकट से बचाकर एक स्वस्थ परम्परा की स्थापना की। जनवरी, 1966 में प्रधानमंत्री शास्त्री की मृत्यु के उपरान्त पुनः ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर राष्ट्रपति के पूर्व परम्परा का अनुसरण कर गुलजारी लाल नंदा को कुछ ही घण्टों में, अन्तरिम कार्यवाहक प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण करवा दी थी। गुलजारी लाल नंदा की बेदाग छवि उन्हे जनमानस में प्रतिष्ठा प्रदान करती रही।

लाल बहादुर शास्त्रीः– पं0 नेहरू कुशल राजनीतिज्ञ थे जिन्होने कामराज योजना के अन्तर्गत प्रधानमंत्री को सभी सम्भवित उम्मीदवारों एवं दावेदारों सर्वश्री मोरारजी देसाई, जगजीवन राम, एस0 के0 पाटिल तथा लाल बहादुर शास्त्री को उत्तराधिकारी की अग्रिम पंक्ति से पृष्ठभूमि में भेज दिया था, परन्तु जनवरी 1964 में अपनी बीमारी

के बाद पं0 नेहरू ने शास्त्री को अविभागीय मन्त्री के रूप में वापस नियुक्त कर उन्हें अपने सम्भावित उत्तराधिकारी की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। भारत में उस समय व्यवहार में नेता पद का निर्धारण करने वाले राजनीतिक शतरंज के प्रमुख खिलाड़ी काँग्रेसाध्यक्ष कामराज, कांगेस कार्य समिति, कांग्रेस संसदीय दल की कार्यकारिणी, राज्यों के मुख्य मत्रिगण, संसदीय दल की कार्यकारिणी, राज्यों के मुख्यमंत्रिगण, संसदीय सदस्यों के प्रभाव तथ हिताश्रित गुट एवं सिण्डीकेट प्रमुख रूप से जबकि निर्णय का वैधानिक एवं वास्तविक केन्द्र काँग्रेस संसदीय दल कहीं पर नहीं था। काँग्रेस अध्यक्ष कामराज भंडार, सिण्डीकेट, मुख्यमंत्रियों तथा संसद सदस्यों का विशाल बहुमत मोरारजी देसाई की तुलना में लाल बहादुर शास्त्री के पक्ष में अधिक था। फलस्वरूप 2 जून, 1964 को इस गुट के समर्थन के कारण शास्त्री को 'सर्वसम्मति' से काँग्रेस संसदीय दल का नेता निर्वाचित कर दिया गया।

श्रीमती इन्दिरा गाँधीः– 11 जनवरी, 1966 को केवल 19 महीने 2 दिन के प्रधान मन्त्रित्व के बाद ताशकन्द में दिल का दौरा पड़ने से लाल बहादुर शास्त्री का निधन हो गया। प्रधानमन्त्री पद के चयन के लिए जो प्रक्रिया चली उसमें अन्तिम रूप से दो प्रमुख उम्मीदवार श्रीमती इन्दिरा गाँधी एवं मोरारजी देसाई शेष रह गए, जिनके मध्य संघर्ष होना अनिवार्य था। प्रधानमंत्री के निर्वाचन में काँग्रेस अध्यक्ष कामराज ने महत्वपूर्ण केन्द्रीय भूमिका निभाई। उनके साथ काँग्रेस का 'सिण्डीकेट गुट' और काँग्रेस शासित राज्यों के मुख्यमंत्री मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री पद से वंचित करने के लिए तत्पर थे। प्रधानमंत्री के चयन में पहली बार राज्यों के मुख्यमंत्रियों का हस्तक्षेप बहुत बढ़ गया। उस समय 14 राज्यों में केवल गुजरात और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्रियों–हितेन्द्र देसाई और चन्द्र भानू गुप्त का समर्थन देसाई को प्राप्त था। श्रीमती गाँधी को 12 राज्यों के सत्तारूढ़ दलों और दो राज्यों के असंतुष्ट दलीय प्रभावक गुटों का और दो राज्यों के सत्तारूढ़ प्रभावक दलों का समर्थन प्राप्त हुआ। इस प्रकार कैबिनेट मन्त्रियाँ और संसद सदस्यों के मध्य प्रभावक गुटों में से अधिकांश ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी को समर्थन दिया। जगजीवन राम और गुलजारी लाल नंदा जैसे शक्तिशाली काँग्रेसी नेता श्रीमती इन्दिरा गाँधी के पक्ष में थे। अन्त में काँग्रेस संसदीय दल के नेता पद के लिए निर्वाचन हुआ जिसमें श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने भारी बहुमत से मोरारजी देसाई को पराजित किया। 1967 के चौथे आम चुनाव और 1971 के मध्यावधि चुनाव के बाद श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रधानमंत्री के रूप में निर्वाचन में उपर्युक्त तत्वों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्तव में मार्च, 1971 में प्रधानमंत्री के चयन में कोई समस्या नहीं थी। यह तो जनता द्वारा विशाल समर्थन से मान्य नेतृत्व का संसदीय दल द्वारा औपचारिक समर्थन एवं नेहरू, लाल की प्रधानमन्त्री निर्वाचन की परम्पराओं का प्रत्यावर्तन मात्र था।

मोरारजी देसाईः– मार्च, 1977 में मोरारजी देसाई जनता पार्टी के निर्देशन में संसदीय दल के नेता चुने जाने पर भारत के प्रधानमत्री बने। जगजीवन राम और चौधरी चरण सिंह भी प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार थे, परन्तु चरण सिंह ने देसाई के पक्ष में अपनी उम्मीदवारी त्याग दी। जगजीवन राम अन्य नेताओं की मदद से अपने को

प्रधनमंत्री पद पर लाने के लिए सक्रिय रूप से प्रयत्नशील थे तथा नेता पद प्राप्त करने की प्रक्रिया के पूर्व निर्णय लेने का कार्य राजनारायण द्वारा जय प्रकाश नारायण के ऊपर छोड़ने का प्रस्ताव किया गया और मधु लिमचे ने इसका समर्थन किया। जे0 पी0 'सर्वसम्मतता' के पक्ष में थे, किन्तु कृपलानी द्वारा घोषित किया गया कि बहुमत मोरारजी देसाई के पक्ष में है, अतः सर्वसम्मतता को त्यागकर जे0 पी0 द्वारा मोरारजी देसाई को बहुमत दल के नेता घोषित कर दिया गया। इस प्रकार 24 मार्च, 1977 को मोरारजी देसाई ने भारत ने चतुर्थ प्रधानमन्त्री पद की शपथ ग्रहण की।

चौधरी चरण सिंहः—मोरारजी देसाई लगभग 28 महीने प्रधानमन्त्री रहे। देसाई के प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र देने पर भारत में नाटकीय ढंग से राजनीतिक घटनाएँ घटित हुई। अन्ततः सत्ता—संघर्ष में विजयी होने पर 26 जुलाई, 1979 को चौधरी चरण सिंह प्रधानमंत्री बन गए। उन्होनें राष्ट्रपति के समक्ष देसाई के मुकाबले अधिक समर्थकों का दावा सिद्ध किया था लेकिन लोकसभा के बहुमत का विश्वास सिद्ध नहीं किया था। इसलिए 20 अगस्त, 1979 को लोकसभा का विश्वास मत प्राप्त किए बिना ही उन्हें अपनी सरकार को त्याग—पत्र दे देना पड़ा। नए मध्यावधि चुनाव होने तक के लिए उन्हें कामचलाऊ सरकार का प्रधानमंत्री बने रहने दिया गया।

पुनः श्रीमती इन्दिरा गाँधीः— जनवरी 1980 में लोक सभा के मध्यावधि चुनाव हुए और श्रीमती इन्दिरा गाँधी पुनः बहुमत के साथ जीतकर प्रधानमंत्री बनी। इस अवधि में मार्च 1971 भांति प्रधानमंत्री के चयन में कोई समस्या नहीं थी। कहा जाता है— यह तो जनता द्वारा विशाल समर्थन से मान्य नेतृतव का संसदीय दल द्वारा औपचारिक समर्थन एवं नेहरू फैसले का समर्थन किया गया राष्ट्रपति द्वारा काँग्रेस संसदीय बोर्ड के काल की प्रधानमत्री निर्वाचन की परम्पराओं का प्रत्यावर्तन मात्र था।

राजीव गाँधीः— 31 अक्टूबर, 1984 को प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी की हत्या हुई। यमन की यात्रा को बीच में ही स्थगित करके राष्ट्रपति ज्ञानी जेल सिंह स्वदेश लौटे। इसी दिन शाम को राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीव गाँधी को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिला दी। पहले की तरह कार्यवाहक प्रधानमंत्री नियुक्त नहीं किया गया। कांग्रेस (इ) संसदीय बोर्ड ने सर्वसम्मति से राजीव गाँधी को अपना नेता चुना और वे प्रधानमंत्री बना दिये गए। 1 नवंबर, 1984 को काँग्रेस (इ) कार्य समिति की एक आपात बैठक हुई जिसमें राजीव गाँधी को संसदीय दल का नेता मनोनीत करने सम्बन्धी केन्द्रीय संसदीय बोर्ड के निर्णय के आधार पर राजीव गाँधी को प्रधानमंत्री पद के रूप में नियुक्त करने के निर्णय की विपक्षी दलों को कड़ी आलोचना की। दूसरी ओर अनेक संविधान वेत्ताओं ने राष्ट्रपति थे निर्णय को 'संविधान—सम्मत' बताया। निःसंदेह, तत्कालीन असाधारण परिस्थितियों में राष्ट्रपति द्वारा राजीव गाँधी को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त करना सही था, क्योंकि उन्हें सम्पूर्ण काँग्रेस दल में भारी समर्थन प्राप्त था।

विश्वनाथ प्रताप सिंहः– 1989 के लोकसभा चुनाव के बाद राष्ट्रीय मोर्चे के नेता के निर्वाचन कें पहले जनतादल के नेतृत्व का प्रश्न जटिल बन गया। जनता दल में विश्वनाथ प्रताप सिंह, चन्द्रशेखर और चौधरी देवीलाल नेता पद के दावेदार थे। विश्वनाथ प्रताप सिंह और चन्द्रशेखर के बीच चौधरी देवीलाल के पद पर सहमति हुई। जनता संसदीय दल की बैठक में हरियाणा के मुख्यमंत्री और सांसद चौधरी देवीलाल को सर्वसम्मति से नेता निर्वाचित किया गया, लकिन उसके पश्चात् नव–निर्वाचित नेता चौधरी देवी लाल ने विश्वनाथ प्रताप सिंह का नाम नेता पद पर प्रस्तावित कर दिया, जिसका सर्वसम्मति से अनुमोदन कर दिया गया। तथा राष्ट्रपति आर0 वेंकटरमन ने उन्हें प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया।

चन्द्रशेखरः– नवम्बर, 1990 में राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार के पतन के बाद जनता दल का विभाजन हुआ। चन्द्रशेखर एवं चौधरी देवीलाल के नेतृत्व में जनता दल (समाजवादी) की स्थापना हुई चन्द्रशेखर को सर्वसम्मति से जनता दल (समाजवादी) का नेता निर्वाचित करने तथा कॉंग्रेस (इ) द्वारा उन्हें समर्थन देने की लिखित सूचना पर राष्ट्रपति आर. वेकटरमन ने उन्हें प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया।

पी0 वी0 नरसिम्हारावः– मई, 1991 में राजीव गॉंधी की हत्या होने के बाद पी0 वी0 नरसिम्हाराव को कॉंग्रेस (इ) का कार्यवाहक अध्यक्ष मनोनीत किया गया। चुनाव कॉंग्रेस (इ) सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर सामने आई। कॉंग्रेस (इ) संसदीय दल में नेता पद के लिए तीन मुख्य दावेदार उभर कर सामने आये– कार्यवाहक अध्यक्ष पी0 वी0 नरसिम्हा राव, मध्य प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह ओर महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री शरद पवार। राजीव गॉंधी की पत्नी सोनिया गॉंधी का राव की तरफ झुकाव, कॉंग्रेस (इ) में दक्षिण भारत के सांसदों की अधिक संख्या, शरद पवार की गैर कांग्रेसी पृष्ठभूमि, अर्जुन सिंह द्वारा अपनी उम्मीदवारी को वापस लेने, नरसिम्हाराव के दीर्घकालीन राजनीतिक अनुभव और गुटवादिता से दूर रहने की मनोवृत्ति तथा उनकी विवाद रहित छवि जैसे कारणों से राव कांग्रेस (इ) संसदीय दल केनेता के रूप में निर्वाचित हुए। देश में यह पहला अवसर था जबकि प्रधानमंत्री पद का प्रत्याशी संसद का सदस्य नहीं था। तत्कालीन राष्ट्रपति आर0 वेकटरमण ने पी0 वी0 नरसिम्हाराव को प्रधानमंत्री को रूप में नियुक्त किया। उनके नेंतृत्व में कांग्रेस (इ) का मंत्रिमण्डल सत्तारूढ़ हुआ।

अटल बिहारी बाजपेयीः– 1996 में अटल बिहारी बाजपेयी को लोकसभा में बहुमत का आधार बताने पर राष्ट्रपति के प्रधानमंत्री नियुक्त किया, लेकिन उनकी पार्टी लोकसभा में स्पष्ट रूप से मत प्रस्ताव नहीं जीत सकी।[11]

एच0 डी0 देवगौड़ाः– 13 दलीय संयुक्त मोर्चे ने कर्नाटक के मुख्यमंत्री एच0 डी0 देवगौड़ा को अपना नेता निर्वाचित किया। अटल बिहारी बाजपेयी के प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देने के बाद राष्ट्रपति डॉ0 शंकर दयाल

शर्मा ने देवगौड़ा को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। देवगौड़ा 1 जून, 1996 को प्रधानमंत्री बने तथा 16 अप्रैल, 1997 को काँग्रेस के समर्थन वापस लेने पर लोकसभा में विश्वास मत हारने से उन्हें पद छोड़ना पड़ा।

इन्द्र कुमार गुजरालः—काँग्रेस ने देवगौड़ा के हटने पर नई सरकार को पुनः समर्थन दिया। जिससे 16 अप्रैल, 1997 को आई0 के0 गुजराल नये प्रधानमंत्री बने, परन्तु उनका कार्यकाल 19 मार्च, 1998 समाप्त हो गया। जैन आयोग के विवरण को लेकर काँग्रेस ने मांग उठाई कि डी0 एम0 के0 मंत्रियों को मंत्रिमण्डल से निकाल दिया जाये। इसे सरकार ने अस्वीकार कर दिया। इसलिए काँग्रेस ने अपना समर्थन पुनः वापस ले लिया तथा गुजराल सरकार त्याग—पत्र दे दिया। पुनः 1998 में चुनाव कराये गये।

पुनः अटल बिहारी बाजपेयीः— 19 मार्च, 1998 को दूसरी बार अटल बिहारी वाजपेयी 19 दलीय मिली—जुली सरकार के प्रधानमंत्री बनाये गये। भाजपा सरकार के एक घटक अन्नाद्रमुक की नेता जयललिता के द्वारा समर्थन वापस लेने के बाद राष्ट्रपति ने सरकार से विश्वास मत हासिल करने का आदेश दिया। सदन में सरकार अपने ही घटक नेशनल कांफ्रेस के सांसद सैफुद्दीन सोज के एक मत से पराजित हो गई। परिणाम स्वरुप सरकार को त्यागपत्र देना पड़ा।

अटल बिहारी वाजपेयी का तीसरी बार चयनः— 13 अक्टूबर, 1999 को राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को पुनः तीसरी बार देश का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। वे 12 मई, 2004 तक भारत के प्रधानमंत्री रहे।

डॉ0 मनमोहन सिंहः— 13 मई, 2004 को चौदहवीं लोकसभा के चुनाव परिणामों में जनता ने सत्तारूढ़ गठबन्धन से नाराज होकर अपना जनादेश कांग्रेस एवं उसके सहयोगी दलों के पक्ष में दिया जिसके कारण कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार बनी ओर 21 मई, 2004 को डॉ0 मनमोहन सिंह देश के प्रधानमंत्री बने। इसमें कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गाँधी की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही।

पुनः डॉ0 मनमोहन सिंहः— मई 2009 को पंद्रहवीं लोकसभा चुनावों में कांग्रेस ने सबसे अधिक मत प्राप्त कर विजय प्राप्त की तथा गठबन्धन द्वारा सत्ता प्राप्त की। और 22 मई, 2009 को दूसरी बार डॉ0 मनमोहन सिंह देश के प्रधानमंत्री बने, और वर्तमान में कार्यरत् हैं।

प्रधानमंत्री की वास्तविक स्थिति :

भारत का प्रधानमंत्री कितने भी शक्तिशाली व्यक्तित्व का हो, सांविधानिक व्यवस्थाएं और अभिसमय प्रधानमंत्री पद को जो भी शक्ति प्रदान करते हैं, उससे प्रधानमंत्री निरंकुश नहीं बन सकता हैं। देश में प्रधानमंत्री की शक्तियां पर निम्नाकित प्रभावशाली अंकुश बने रहते हैः—[12]

1. **लोकमत का नियन्त्रणः–** कोई भी प्रधानमत्री लोकमत को बदल नहीं सकता। लोकप्रियता उसकी 'महाऔषधि' है। पं0 नेहरू जनमत के समर्थन पर ही निर्विवाद नेता बने रहे।
2. **लोकसभा में बहुमत का प्रतिबन्धः–** प्रधानमंत्री लोक सभा के बहुमत के बल पर ही अपनी शक्तियाँ का प्रयोग कर पाता है। निरंकुश आचरण करने पर प्रधानमंत्री बहुमत का विश्वास खो सकता हैं। और अपनी स्थिति को खतरें में डाल सकता है।
3. **साथी मन्त्रियों का अंकुशः–** प्रधानमंत्री अपनी कैबिनेट के महत्वपूर्ण और व्यापक प्रभाव वाले साथियों की इच्छा के विरूद्ध कार्य करने से प्रायः बचता है ताकि उसकी स्थिति में दुबर्लता उत्पन्न न हो।
4. **दलीय प्रतिबन्धः–** अपने दल के बल पर ही कोई व्यक्ति प्रधानमंत्री पद पर बैठता है, अतः उसे कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पूर्व अपने संसदीय दल का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक होता है।
5. **राज्यों में विरोधी दलों का सरकारः–** राज्यों में विरोधी दलों की सरकारें प्रधानमंत्री की तानाशाही प्रवृत्ति पर अंकुश लगा सकती है। यदि केन्द्र और सभी राज्यों में एक ही दल सत्तारूढ़ हो तो भी राज्य सरकारों की इच्छा का सम्मान प्रधानमंत्री को करना पडता है।
6. **मुख्यमंत्रियों का दबावः–** प्रधानमन्त्री को अपनी नीतियों की सफलता के लिए राज्यों के मुख्यमंत्रियों को साथ लेकर चलना पड़ता है। उनके युक्ति संगत दबाव को वह सहन करता है। अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजग मुख्यमंत्री अपने सद्परामर्श से प्रधानमंत्री को निरंकुशता की ओर नहीं जाने देते।
7. **राष्ट्रपति का परामर्शः–** राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की मंत्रणानुसार अपनी शक्तियाँ और कार्यो का निर्वहन करता है, लेकिन वह अपने सद्परामर्श, अपनी सामयिक चेतावनी आदि के माध्यम से प्रधानमंत्री के ऐसे कदमों पर प्रभाव डाल सकता है जो निरंकुशता की ओर बढ़ रहे हों। प्रधानमंत्री को एक मैत्रीपूर्ण राष्ट्रपति की आवश्यकता सदैव ही होती है।
8. **विरोधी दलः–** विरोधी दलों की रचनात्मक आलोचना प्रधानमंत्री को निरंकुशतता की ओर जाने से रोकती हैं
9. **बहुदलीय व्यवस्थाः–** यदि केन्द्र में एक ही दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो या जो बहुमत मिले वह बहुमत कम सदस्यों का हो तो यह स्थिति प्रधानमंत्री को नियन्त्रित रखती हैं।
10. **न्यायपालिकाः–** संविधान – विरोधी कानून को असंवैधानिक घोषित करने की जो शक्ति न्यायपालिका को होती है, वह भी प्रधानमंत्री को बड़ी सीमा तक नियन्त्रित रखती है।
11. **निष्पक्ष निर्वाचन आयोगः–** संविधान में एक निष्पक्ष निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गई है जो प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में चुनाव सम्बन्धी मामलों में प्रधानमंत्री की निरंकुशता पर प्रतिबन्ध लगाती है। इस

कारण भारत का कोई भी प्रधानमंत्री 'तानाशाह' नहीं बन सकता। वह सांविधानिक सीमाओं के भीतर रहकर ही अपनी शक्तियाँ का प्रयोग करता है।

समीक्षा :

प्रधानमंत्री की भूमिका के सम्बन्ध में **डा0 विमला शुक्ला** ने लिखा है, कि 'यदि कोई प्रधानमंत्री अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व, निर्विवादित नेतृत्व एवं राष्ट्रीय स्तर की ख्याति और लोकप्रियता के कारण अपने स्वयं के आधार पर प्रधानमंत्री का पद प्राप्त करेगा तो निश्चित रूप से उसकी भूमिका प्रधानमंत्रीय होगी। ''यदि कोई प्रधानमंत्री जनता का विश्वास प्राप्त करता है तथा उससे प्रत्यक्ष सम्बन्ध कायम करता है तो वह व्यक्तित्व प्रधानमंत्रीय भूमिका के निर्वाह के लिए अधिक सक्षम है। प्रधानमंत्री के अपने दल की आन्तरिक प्रतियोगिता उसकी इस भूमिका पर प्रभावी अवरोध लगा सकती है। विपरीत स्थिति में, जब दल के नेता लोग प्रधानमंत्री को शक्ति का स्रोत समझकर चुनाव विषयों के लिए उस पर निर्भर हों, तो प्रधानमंत्री स्वायत्तशासी और दलीय नेताओं के प्रभाव और परामर्श से स्वतन्त्र आचरण कर सकता हैं।''[13]

भारतीय प्रधानमंत्री की शक्ति उसकी राजनीतिक स्थिति पर निर्भर करती है। 1989 के लोकसभा निर्वाचन के उपरान्त किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत न आने से प्रधानमंत्री के वास्तविक प्रभाव में कुछ कमी आयी है। 1989 में गठित जन मोर्चा सरकार का नेतृत्व वी0 पी0 सिंह कर रहे थे। यह सरकार बाहर से समर्थन पर आश्रित की। साथ ही कई दलों की सरकार होने से आन्तरिक दबावों से भी भ्रमित थी। प्रधानमंत्री का प्राधिकार और शक्ति सदन में उसके दल के बहुमत पर निर्भर करता है। बहुमत का अभाव सरकार के जीवन को कम कर देता है। 1991 में कांग्रेस की अल्पमत सरकार के प्रधानमंत्री पी0 वी. नरसिम्हा राव अपने कार्यकाल में सरकार को बचाये रखने के लिए जोड़–तोड़ का सहारा लेते रहे, परिणामस्वरुप सांसदों के खरीद से सम्बन्धित तथा कथित प्रकरणों के कारण न्यायालय में भी उलझना पड़ा।[14] 1996 में अटल बिहारी वाजपेयी देश के प्रधानमंत्री बनें, लेकिन वे लोकसभा में विश्वासमत नहीं जीत सके परिणाम स्वरुप तेरह दिन में ही सरकार से बाहर होना पड़ा। इस सरकार के विकल्प के रूप में संयुक्त मोर्चा के एच0 डी0 देवगोड़ा 31 मार्च, 1996 को प्रधानमंत्री बनाए गए। यह सरकार काँग्रेस के बाह्य समर्थन पर टिकी हुई थी, साथ ही स्वयं देवगोड़ा भी राष्ट्रीय नेताओं में से नहीं थे। जिससे लालू प्रसाद यादव, शरद याद आदि नेता उनके विरोध रखते थे, जिसके कारण जनता दल अन्तः कलह से लगातार जूझता रहा, परिणामतः कांग्रेस ने मोर्चे पर दबाव बनाकर एच0 डी0 देवगोड़ा को त्याग–पत्र देने के लिए बाध्य कर दिया।

काँग्रेस के सरकार बनाने में असफल हो जाने के बाद संयुक्त मोर्चा ने इन्द्र कुमार गुजराल को अपना नेता चुना। गुजराल के नाम का फैसला आसान कार्य नहीं था। मोर्चा के नेताओं के निजी अहम् और विवादों के

कारण समझौते के रूप में गुजराल को यह पद प्राप्त हो गया। 21 अप्रैल, 1997 को गुजराल को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। यह सरकार की अल्पजीवी रही। जैन आयोग की रिपोर्ट के नाम पर कांग्रेस ने इस सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। इस रिपोर्ट मे राजीव गाँधी की हत्या में डी0 एम0 के0 की भूमिका पर सन्देह किया गया था। अतः गुजराल ने प्रधानमंत्री पद से त्याग–पत्र दे दिया। किसी अन्य दल द्वारा सरकार बनाने की पेशकश न किये जाने पर राष्ट्रपति ने 18 माह 19 दिन में लोकसभा भंग कर दिया।

13वीं लोकसभा के चुनावों में भाजपा के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन मोर्चे के उभरने के पश्चात् मोर्चे के नेता अटल बिहारी वाजपेयी ने तीसरी बार 13 अक्टूबर, 1999 को देश के प्रधानमंत्री पद का कार्यभार संभाला। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन में भाजपा को छोड़कर 22 अन्य दलों तथा श्रीमती मेनका गाँधी को निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में लोकसभा में प्रतिनिधित्व मिला। इस सरकार का भविष्य भी भाजपा की मौलिक नीतियाँ की तिलांजलि तथा क्षेत्रीय दलों की प्रबन्ध पर निर्भर रहा। मार्च, 2002 में शिलादान कार्यक्रम, गुजरात दलीय राजग की स्थिति अत्यन्त नाजुक बन गई थी, इसी के परिणामस्वरुप 14वीं लोकसभा में राजग बहुमत प्राप्त नहीं कर सका।

15वीं लोकसभा में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला। ''भाजपा सबसे बड़े दल के रूप में उभरी।''[15] उसके नेतृत्व में दूसरी बार अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री बनाया गया। अटल बिहारी वाजपेयी ने संविदा सरकार की मजबूरियाँ को समझते हुए अपने गठबन्धन में सम्मिलित सभी दलों को सरकार में सम्मिलित करने तथा अन्य सभी प्रकार से संतुष्ट करने का प्रयास किया, लेकिन अन्नाद्रमुक की नेता जयललिता ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया। इस स्थिति में राष्ट्रपति ने सरकार से सदन में विश्वास मत प्राप्त करने का आदेश दिया, परिणामस्वरूप सरकार सदन में एक मत से पराजित हो गई। अन्य किसी भी दल द्वारा विकल्प के रूप में सरकार नहीं बनाई जा सकी तथा लोकसभा को भंग कर दिया गया।

1989 से 2009 की अवधि में प्रधानमंत्री की राजनीतिक स्थिति प्रायः कमजोर रही। इसका प्रमुख कारण किसी भी दल का स्पष्ट बहुमत न होना तथा अल्पमत या भविष्य क्षेत्रीय दलों के हाथों में सिमट गया तथा प्रधानमंत्री की स्थिति राजनीतिक मजबूरी बनकर रह गई। 22 मई, 2004 से कांग्रेस के डॉ0 मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यू0 पी0 ए0 गठबंधन ने देश की सत्ता संभाली जो आज तक अनवरत् चल रही है।

संघ सरकार एवं इकाई राज्यों की सरकारों के मध्य कड़ी के रूप में कार्य करना भी उसी का उत्तरदायित्व है। इन सभी पदों के एक ही व्यक्ति में समाहित हो जाने के कारण प्रधानमंत्री का पद शक्ति, प्रतिष्ठा, गौरव एवं गरिमा का पद बन गया है।

सन्दर्भ सूची–

1. वर्कले, हम्फ्री : ''द पॉवर ऑफ प्राइम मिनिस्टर'' लन्दन जार्ज रूलेन एण्ड अनविनः 1968
2. वही
3. वसु, डी.डी.ः भारतीय संविधान।
4. जैन, हरिमोहन, ''विभिन्न देशो के संविधानों का तुलनात्मक विवेचन, 2005, राजस्थान।
5. Shiva Rao, B.Ed., "The Framing of India's Constitution - A Study, New Delhi. The Indian Institute of Public Administration, 1968, P. 334.
6. C.A.D. (Constitution Assembly Debates), Vol. IV, No. 2, P. 578.
7. Shukla, B.R. (N.M.P.) : Parliament, The Executive and the Judiciary in India, in the journal of Parliamentary Information, Vol. XXII, No. I Jan- March, 1976, P. 38.
8. West Minister Model.
9. "The Post-War epoch has seen the Transformation of Cabinet Government into Prime-Ministrial Government: Under the System, the hyphen which joins, the bukle which fetens, the legislative part of the state to the executive part becomes and single man. "R.H.S. Crossman's - Introduction in the Walter Bagehot, 'The English Constitution in Anthony King Led) : The British Prime Minister London, MacMillan, 1969. P. 153.7,
10. John P. mackintosh : Op.Cit. and the Prime Minister and the Cabinet in Parliamentary Affairs, Winter, 1967-68, PP. 53-68.
11. F.W.G. Bernemy: The elected Horach- the Development of the Powers of the Prime Minister, London, 1965, P. 245.
12. Letter from Nehru to Patel, 23 Dec. 1947 and his note to Gandhi, 6 Jan, 1948 in Durga Das, (ed.) Sardar Patel's correspondence, 1945-50, Vol. VI - Ahmedabad, Navjivan Publicity House, 193, 99, 10-12 and PP. 17-21.
13. गोयल ओ0पी0 ''इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', दिल्ली, अंकुर पब्लिशिंग हाउस, 1977.

14. रॉय, एम.पी. त्रिवेदी, डॉ0 आर. एन. : ''भारतीय सरकार एवं राजनीति'', जयपुर कालेज बुक डिपो, 1995.

15. शुक्ला, विमला : भारतीय संविधान में प्रधानमंत्री की भूमिका,'' लखनऊ ईस्टर्न बुक कम्पनी।

16. जैनिंग्ज सर आईवर : ''कैविनेट गवर्नमेन्ट,'' केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1959.

17. जौहरी, जे.सी. इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलीटिक्स.''

18. पाण्डे, जय नारायण : ''भारतीय संविधान,'' 1985.

19. लिमये, मधु : ''राष्ट्रपति बनाम प्रधानमंत्री,'' 1987 दिल्ली पब्लिकेशन्स, 1980.

20. वेददान, सुधीर : ''भारतीय संविधान और प्रधानमंत्री,'' 1987 प्रिंट वेल पब्लिशर्स, जयपुर।